International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 5.414 Volume 7, Issue 03, March 2020
Website- www.aarf.asia, Email : editoraarf@gmail.com

प्राचीन काल के छठी शताब्दी ई०पू० में जैन धर्म और बौद्ध धर्म का ऐतिहासिक महत्त्व

डॉ० बिद्या भारती
एम० ए०, पी-एच० डी० (प्राचीन भारतीय इतिहास),
तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

भूमिका : सारा विश्व जब प्रस्तर-युग से गुजर रहा था, तब भारतीय धार्मिक संस्कृति और सभ्यता समृद्ध हो चुकी थी। हमारे वेदों, ग्रन्थों और उपनिषद्रों के ऋचाओं से विश्व समाज का दिगदिगन्त गुंजित हो रहा था। विश्व की सर्वाधिक प्राचीन सांस्कृतिक और धार्मिक संस्थाओं में भारतीय धार्मिक संस्थाएँ अग्रणी हैं। इसमें धार्मिक जीवन के साथ साथ नैतिकता एवं मौलिकता के तत्व अधिक समाहित हैं।

जैन धर्म के संस्थापक महावीर स्वामी थे; परन्तु जैन अनुश्रुतियों के अनुसार जैन धर्म अत्यधिक पुराना है और महावीर स्वामी के पहले भी इस धर्म के 23 तीर्थन्कर हो चुके थे। महावीर स्वामी तो इस धर्म के 24वें तीर्थकर थे, जिन्होंने जैन धर्म की बहुत अधिक सेवा की। इसके 24 तीर्थंकरों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं – सर्वप्रथम तीर्थंकंर ऋषभ देव, अजितनाथ, शंभुनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमितनाथ, सुपादूमनाथ, चन्द्रप्रभु, पुष्पधर, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, बासूपुज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, तण्डी, कुण्डू, अवनाथ, लल्लीनाथ, मुनि सुब्रतनाथ, निमिनाथ, सुपार्श्वनाथ और वर्धमान महावीर स्वामी ।

महावीर स्वामी का जीवन परिचय : महावीर स्वामी का जन्म ईसा से 599 वर्ष पूर्व वैशाली के निकट उत्तरी बिहार के वर्त्तमान ''वैशाली जिले में स्थित कुण्डग्राम'' में हुआ था।

जैन धर्म के सिद्धान्त तथा उपदेश : 1. अनीश्वरवाद, 2. सृष्टि का जीवन तथा अजीवन के संयोग से निर्माण, 3. आत्मावाद, 4. जीवन की भौतिक और आध्यात्मिक

© Associationof Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

प्रवृत्तियों में विश्वास, 5. कर्म की प्रधानता में विश्वास, 6. कर्मों के रोकने तथा हटाने की आवश्यकता, 7. त्रिरत्नों का विधान, 8. पंच महाव्रत, 9. तीन गुणव्रत, 10. चार शिक्षाव्रत, 11. व्रत तथा तपस्या का महत्व, 12. साधुओं का आदर्श तथा 13. तीर्थकरों का उपासना में विश्वास। भारत में बौद्ध धर्म का समकालीन धर्म है–जैन धर्म। दोनों ही धर्म ई0 पू0 छठी शताब्दी में विकसित हुए। छठी शताब्दी को धर्म की दृष्टि से 'स्वर्ण युग' कहा जाता है।

'जैन' शब्द का अर्थ है– 'जिन' का अनुयायी और 'जिन' का अर्थ है, जिसने राग–द्वेष को जीत लिया जिसने अपनी इन्द्रियों, वासनाओं तथा समस्त विकारों पर विजय प्राप्त कर ली है। कहा जाता है कि तीर्थंकरों ने समस्त मानवीय वासनाओं पर विजय प्राप्त कर ली थी। इस प्रकार वे 'जिन' हो गये थे। 'जिन' अर्थात् तीर्थंकर से प्रवर्तित धर्म ''जैन धर्म'' कहलाया।

जहाँ तक इसके संस्थापक का प्रश्न है– इस संबंध में चौबीस तीर्थंकरों (गुरू या मार्ग दर्शक या जिन) का उल्लेख मिलता है। 'तीर्थंकंर' मुक्त पुरूष होते हैं। बंधन से परे तथा मोक्ष को प्राप्त होते हैं। उनके उपदेशों और शिक्षाओं पर चलने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। ऐसे तीर्थंकरों में, सर्वप्रथम तीर्थंकंर ऋषभदेव माने जाते हैं। इनकी गणना विष्णु के चौबीस अवतारों में की जाती है। इसी कारण, जैन साहित्य के साथ–साथ प्राचीन वेद–साहित्य में भी उनका श्रद्धापूर्ण स्मरण प्राप्त होता है। ऋषभदेव से ही मानव धर्म (समाज नीति, राजनीति आदि) की व्यवस्था प्रचलित हुई। 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ हुए तथा 24वें एवं अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर हुए। जैन धर्म के विकास में सभी तीर्थंकरों के उपदेशों और शिक्षाओं का योगदान है, किन्तु जैन धर्म को मुख्यतः महावीर के उपदेशों पर आधारित माना जाता है।

महावीर के कुछ समय बाद जैन धर्म में श्वेतांबर और दिगम्बर दो सम्प्रदाय हो गए। दोनों ने ही दार्शनिक साहित्य का विकास किया। दिगंबर का अर्थ है– 'दिक्' (अर्थात् दिशा) है अंबर (वस्त्र) जिसका, अर्थात् नग्न। जैन साधु परिग्रह या सम्पत्ति नहीं रखते। उनके पास ऐसी कोई वस्तु नहीं होती, जिसे गाँठ में बाँधकर रखा जाय। इसलिए वे निर्ग्रन्थ कहे जाते हैं। अपरिग्रह और त्याग का यह चरम

उदाहरण है। 'श्वेतांबर' का अर्थ है– 'श्वेत (उजला, सफेद वस्त्र) है आवरण जिसका।' श्वेतांबर नग्नता को विशेष महत्व नहीं देते। दोनों सम्प्रदायों में अन्य कोई मौलिक अन्तर नहीं है।

जैन धर्म की मूल विशेषताएँ : जैन धर्म कई मौलिक विशेषताओं से सम्पन्न है। इस धर्म का साहित्य अत्यंत विस्तृत है। इसमें अध्यात्म के सिद्धान्त भी प्रतिपादित हैं तथा आचरण संबंधी व्यवहार भी। इस धर्म का नैतिक आधार पुष्ट, परिपुष्ट एवं विस्तृत है। इस खंड में जैन धर्म की आध्यात्मिक विशेषताएँ वर्णित हैं, जबकि इसके अगले खंड में व्यावहारिक पक्ष नैतिकता संबंधी पहलुओं की चर्चा की गई है। आध्यात्मिक विशेषताओं को निम्न खंडों में रखा जा सकता है :

1. जैन धर्म की पहली विशेषता : संसार को 'मिथ्या' नहीं, वास्तविक मानना। इस धर्म के अनुसार, विश्व है, बराबर रहा है और बराबर रहेगा। जैन दर्शन के अनुसार हर जीवधारी आत्मा तथा प्रकृति के सूक्ष्म मिश्रण से बने हैं। इनको जोड़ने वाली कड़ी है–कर्म। कर्म से सम्पृक्त होने के कारण आत्मा को अनेक शरीर धारण करना पड़ता है। इस प्रकार, वह जन्म–जन्मान्तर के बंधन में फँस जाता है।

2. जैन धर्म की दूसरी विशेषता : मोक्ष में विश्वास, इसे जीवन का परम लक्ष्य माना जाता है। मोक्ष को जैन धर्म में 'कैवल्य' कहा जाता है । इसे आत्मा के विकास द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इस दशा में कर्म के बंधन तथा पुद्गल के अवरोधक बंधन टूट जाते हैं तब आत्मा चिरंतन आनंद को प्राप्त होती है। मोक्ष में विश्वास केवल जैन धर्म की विशेषता नहीं, हिन्दू धर्म की भी विशेषता है; लेकिन एक अंतर है दोनों में। हिन्दू धर्म के अनुसार मोक्ष की अवस्था में आत्मा का ब्रहम में विलय हो जाता है; जबकि जैन धर्म के अनुसार आत्मा का व्यक्तित्व कैवल्य में भी सुरक्षित और स्वतंत्र रहता है।

3. जैन धर्म की तीसरी विशेषता : अनेकांतवाद, जैन धर्म का सबसे प्रमुख सिद्धान्त है। अनेकांतवाद इस कारण प्रमुख आधारभूत है; क्योंकि यह जैन धर्म का 'सहिष्णुता, समन्वय एवं सह–अस्तित्व के सिद्धांत में निहित है। अनेकांतवाद की

सुंदर व्याख्या राष्ट्रकवि दिनकर ने अपनी पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय में प्रस्तुत किया है। इनके शब्दों में – ''वस्तु को जिस दृष्टिकोण से देख रहे हैं, वस्तु उतनी ही नहीं है। उसे अनन्त दृष्टिकोणों से देखे जाने की आवश्यकता है। उसका विराट स्वरूप अनंत धर्मात्मक है। तुम्हें जो दृष्टिकोण विरोधी मालूम होता है, उस पर ईमानदारी से विचार करो तो उसका विषयभूत धर्म की वस्तु में विद्यमान दिखायी पड़ता है। चित्त से पक्षपात को निकालो और दूसरे के दृष्टिकोण को भी सहिष्णुतापूर्वक खोजो, वह भी वहीं लहरा रहा है।'' वस्तुतः अनेकांतवाद जैन दर्शन का 'बौद्धिक अहिंसा का सिद्धांत है। धर्म की दृष्टि से जीवन, नैतिकता और मानव–अस्तित्व का यह अनुपम सिद्धांत है।

4. जैनधर्म की चौथी विशेषता : स्याद्वाद के अनुसार, 'सच्चा अहिंसक यह नहीं कहेगा कि यह बात सत्य है'। उसके मुख से यही निकलेगा कि 'स्यात् यह ठीक है।' इस प्रकार, अनेकांतवाद और स्याद्वाद जैन धर्म के विचारों और सिद्धान्तों के आधार स्तम्भ हैं। बौद्धिक अहिंसा धर्म का प्रतिपादक है। धर्म की आधारभूमि के रूप में इसकी महानता स्वीकार करने योग्य है।

5. जैन धर्म में ईश्वर की परिकल्पना है ही नहीं। यह अनीश्वरवादी धर्म है। इसके अनुसार यह संसार किसी ईश्वर की सृष्टी नहीं है। सृष्टि का अस्तित्व और कार्य स्वतः अपने आंतरिक नियमों द्वारा होता है। यह धर्म स्वतंत्र चिन्तन का फल है। पशु–यज्ञों की निन्दा करने वाला, रूढ़िवादी विचारों का विरोध करनेवाला तथा किसी सृष्टिकर्त्ता ईश्वर में विश्वास नहीं करनेवाला धर्म है यह जैन धर्म है।

6. जैन धर्म वस्तुतः ईश्वर में विश्वास नहीं करते हुए मनुष्य को ही ईश्वर बनाना चाहता है। इस धर्म के अनुसार मनुष्य स्वयं एक पूर्ण सत्ता है। मनुष्य जगत का सष्टा तो अवश्य नहीं है, परन्तु तत्वतः वह अपने में पूर्ण है। वह अनन्त शक्ति, ज्ञान, विश्वास और आनंद प्राप्त करने की क्षमता रखता है। वह अनन्त चतुष्टय (अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत वीर्य) की प्राप्ति कर सकता है। वह ईश्वरत्व को प्राप्त कर सकता है। यदि ईश्वर हैं, तो मनुष्य के रूप में ही हैं।

7. जैन धर्म किस सीमा तक नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास की बातें कहता है– यह उसके अहिंसा के सिद्धान्त से स्पष्ट होता है। अहिंसा इस धर्म की प्रमुख पहचान है। अहिंसा नैतिक जीवन का परम मूल्य है। यह एक सद्‌गुण है। अहिंसा हिन्दू धर्म में भी है, परन्तु जैन धर्म ने इसे परम कोटि तक पहुँचा दिया है। वस्तुतः जैन धर्म का मूल और आधार ''अहिंसा'' ही है। इसमें छोटे–से–छोटे व्यवहार के लिए भी धार्मिक एवं नैतिक नियमों का विधान किया गया है। मनुष्य जान–बूझ कर छोटे–से–छोटे जीव तक की हत्या नहीं कर सकता। आत्म–संयम और कठोर नियंत्रण जैन धर्म में मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है।

जैन धर्म की नैतिक शिक्षाएँ : जैन धर्म सैद्धान्तिक ही नहीं व्यवहारिक भी है। यदि धर्म क्रिया की वस्तु है, तो जैन धर्म मनुष्य को अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए मार्ग का निर्धारण करता है। यह केवल उपदेश मात्र नहीं है। तीर्थंकर 'त्रिरत्न' या 'रत्नत्रय' का उपदेश करते हैं। ये तीन रत्न हैं :(क) सम्यक् दर्शन (ख) सम्यक् ज्ञान तथा (ग) सम्यक् चरित्र।

इन तीनों के बीच आपसी सहयोग, तालमेल के द्वारा मनुष्य अपने लक्ष्य, अपनी मंजिल यानी मोक्ष को प्राप्त कर सकता है । सम्यक् ज्ञान बिना सम्यक् दर्शन या विश्वास के संभव नहीं और सम्यक् चरित्र बिना सम्यक् ज्ञान के नहीं हो सकता ।

वस्तुतः 'सम्यक दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र, में ही जैन धर्म की नैतिक शिक्षाओं का सार छिपा है।

सम्यक् दर्शन : इसका अर्थ है– सत्य के प्रति श्रद्धा की भावना। जैन सिद्धान्तों, तीर्थंकर के उपदेशों और शिक्षाओं में आंतरिक, अखंड विश्वास सम्यक् दर्शन की मूलात्मा है।

सम्यक् ज्ञान : इसका अर्थ है– जीवन तथा अजीवन के मूल तत्वों का ज्ञान प्राप्त करना। इसे आंतरिक ज्ञान कहा जाता है। यह मनुष्य को बंधन मुक्त करता है। ऐसा ज्ञान अमृत है। यह ज्ञान किसी दूसरे पर निर्भर नहीं है; यह मनुष्य की अपनी उपलब्धि है।

सम्यक् चरित्र : इसका अर्थ है- हितकर कार्यों का आचरण एवं अहितकर कार्यों का वर्जन। विश्वास और ज्ञान तो सैद्धान्तिक दृष्टि से ठीक है, किन्तु जरूरी यह है कि चरित्र एवं आचरण में इसे उतारा जाय। सम्यक् चरित्र व्यक्ति को मन, वचन और कर्म पर नियंत्रण स्थापित कराने में समर्थ होता है। यह मोक्ष की प्राप्ति का सबसे महत्वपूर्ण कदम है। यही जैन धर्म को व्यवहारिक रूप देता है। जैन धर्म में पाँच ऐसे कर्मों और व्रतों को बताया गया है, जो सबों के लिए आवश्यक है। इन्हें जैन धर्म में ''पंच महाव्रत'' की संज्ञा दी गयी है।

अहिंसा : जैन धर्म की पहचान अहिंसा व्रत से होती है - यदि ऐसा कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। जैन धर्म हिंसा की स्वीकृति नहीं देता। इस धर्म में इसका पालन केवल क्रिया में ही नहीं, वाणी से भी करना अनिवार्य माना गया है। यह जैन धर्म के पालन को 'तपस्या की तरह कठिन' बना देता है।

सत्य : अहिंसा के बाद दूसरा कदम है- सत्य का पालन। सत्य का आदर्श सुमृत है। 'सुमृत का अर्थ है- वह सत्य जो प्रिय एवं हितकारी हो। अस्तेय : इसका अर्थ है-चोरी का निषेध। किसी व्यक्ति के धन के अपहरण करने की कामना करना, उसके जीवन के अपहरण के तुल्य है। अतः चोरी का निषेध करना नैतिक अनुशासन कहा गया है। तथा ब्रह्मचर्य : इसका अर्थ है-वासनाओं का त्याग करना। ब्रह्मचर्य का अर्थ साधारणतः इन्द्रियों पर रोक लगाना है। परन्तु जैन धर्म में ब्रह्मचर्य का अर्थ सभी प्रकार की कामनाओं का परित्याग है।

अपरिग्रह : इसका अर्थ है-विषय की आशक्ति का त्याग। मनुष्य के बंधन का कारण सांसारिक वस्तुओं में आशक्ति है। सांसारिक विषयों के अन्दर रूप, स्पर्श, गंध, स्वाद तथा शब्द आते हैं। इसलिए अपरिग्रह का अर्थ रूप, स्पर्श, स्वाद तथा शब्द इत्यादि विषयों का परित्याग करना कहा जा सकता है।

जैन धर्म में पाँच व्रतों के अतिरिक्त कुछ अन्य नियमों और कार्यों का भी उल्लेख है। संक्षेप में, जैन धर्म की समस्त नैतिक शिक्षाएँ 'सम्यक् दर्शन (विश्वास), सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र' के बीच सहयोग एवं समन्वय में निहित है। जैन धर्म

की कुछेक विशेषताएँ ऐसी हैं, जो इसे हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म आदि से अलग रखती हैं। वह वेदों का विरोधी और वैदिक हिंसा (पशुओं की बलि) का कट्टर आलोचक है और बहुत से हिन्दू धार्मिक संस्कारों को अमान्य कर देता है। जैन धर्म बिना किसी बाहरी सहायता के अपने पुरूषार्थ द्वारा पारमार्थिक कल्याण प्राप्त करने का मार्ग बतलाता है। भारतीय धर्म एवं दर्शन को इसने कई प्रकार से प्रभावित किया है। ज्ञान मीमांसा के क्षेत्र में अपने नए सिद्धांत द्वारा न्याय और तर्कशास्त्र को पुष्ट तथा परिपुष्ट किया। तत्व मीमांसा में आत्मा और प्रकृति को ठोस आधार प्रदान किया। आचार शास्त्र में नैतिक आचरण, विशेषकर अहिंसा को इस धर्म से नया बल मिला है।

बौद्ध धर्म : बौद्ध धर्म का जन्म भारत में, ईसा से छः शताब्दी पूर्व हुआ। इसे यों समझें कि इसका इतिहास 2600 वर्षों का है। इसी कारण, इसकी गिनती भारत के प्राचीन धर्मों में की जाती है। इस धर्म के जन्म-काल से ही प्रचार-प्रसार किए जाते रहे, जो आज तक जारी है। अतः बौद्ध धर्म के अनुयायी केवल भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व के अन्य देशों में भी पाए जाते हैं। इन देशों में वर्मा, चीन, जापान, लंका, इन्डोनेसिया, जावा, सुमात्रा, श्याम, बलख, मंगोलिया, यूनान, बुखारा और मध्य एशिया मुख्य हैं; लेकिन इस धर्म का मूल केन्द्र अभी भी भारत ही है।

बौद्ध धर्म के संस्थापक रहे हैं- महात्मा बुद्ध। इनके उपदेश 'त्रिपिटक' में संकलित हैं। 'त्रि' का अर्थ हुआ तीन और 'पिटक' का अर्थ हुआ- पिटारी, यानी महात्मा बुद्ध के उपदेशों की तीन पिटारियाँ हैं। इनके नाम हैं- विनय पिटक, सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक। ये पालि भाषा में हैं। ये त्रिपिटक बौद्ध धर्म के दर्पण हैं। इनमें बुद्ध के उपदेश तो हैं; लेकिन बुद्ध ने इन्हें लिखा नहीं। तब ये त्रिपिटक आए कैसे?

भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण (483 ई0 पू0) के 6 वर्ष के बाद 477 ई0 पू0 राजगृह में हुआ। एक सभा में सर्वप्रथम भगवान बुद्ध के प्रवचनों को लिपिबद्ध किया गया। सौ वर्षों बाद 377 ई0 पू0 वैशाली में इसी विषय पर पुनः एक सभा हुई।

एक सौ छत्तीस वर्षों बाद अर्थात् 241 ई0 पू0 में पाटलिपुत्र में आयोजित तीसरी सभा में त्रिपिटकों में बौद्ध धर्म के दर्शन, सिद्धांतों, नियमों को प्रामाणिक रूप दिया गया।

भगवान बुद्ध ने क्लेशों या दुःखों के नाश हेतु 84,000 धर्म-स्कंधों का उपदेश दिया था। उनके अनुसार आचरण करने से समस्त क्लेशों से मुक्ति संभव हो जाती है। इन धर्मों को संक्षेप में 12 भागों में बाँटा गया है। इन बारह भागों को यदि और संक्षिप्त कर दिया जाय, तो वे सभी तीन त्रिपिटकों में समाविष्ट हो जाते हैं। विनय पिटक में नीति की बातों का संकलन है। भिक्षुओं के लिए भगवान बुद्ध द्वारा निर्देशित आचार-संहिता भी इसी में है। सुत्त पिटक में पाँच निकायों में धर्म की बातें-बौद्ध धर्म के सिद्धान्त एवं भगवान बुद्ध की संगोष्ठियाँ-संकलित हैं। अभिधम्म पिटक में दार्शनिक चर्चाएँ और धर्म विश्वास वचन संकलित हैं। इसे ही बौद्ध मनोविज्ञान कहा जा सकता है। बौद्ध धर्म को समझने के लिए इन त्रिपिटकों का अध्ययन आवश्यक है।

बौद्ध धर्म की मूल बातें : बौद्ध धर्म का मूल है-प्रतीत्य समुत्पाद। प्रतीत्य का अर्थ है-किसी वस्तु के उपस्थित होने पर और समुत्पाद का अर्थ है-किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति। इसलिए प्रतीत्य समुत्पाद का अर्थ हुआ-एक वस्तु के उपस्थित होने पर किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति अर्थात् एक के आगमन से दूसरे की उत्पत्ति। प्रतीत्य समुत्पाद के अनुसार, 'अ' के रहने पर 'ब' का प्रादुर्भाव होगा और 'ब' के रहने पर 'स' की उत्पति होगी। इस प्रकार, प्रतीत्य समुत्पाद सिद्धान्त कार्य-कारण सिद्धान्त पर आधारित है।

प्रतीत्य समुत्पाद के अनुसार, कोई भी घटना बिना किसी कारण नहीं घट सकती और यह कारण या कार्य नित्य नहीं रहता। कारण के हटते ही कार्य समाप्त हो जाता है। प्रतीत्य समुत्पाद को जीवन के विकास का क्रम कहा गया है। यह बताता है कि, प्राणी किस प्रकार अविद्या के कारण नाना प्रकार के अनुभवों और चेतना की अवस्था में भ्रमण करता है। दुःख का आधिक्य ही प्राणी को दुःख निरोध की ओर ले जाता है। भगवान-बुद्ध-ने प्रतीत्य समुत्पाद को 'महान सत्य' माना

है। उनके शब्दों में– 'जो कोई प्रतीत्य समुत्पाद को देखता है, वह धर्म को देखता है और जो कोई धर्म को देखता है, वह प्रतीत्य समुत्पाद को देखता है।'

भगवान बुद्ध की शिक्षाओं का मुख्य लक्ष्य दुःख से छुटकारा पाना है। उन्होंने इन बातों को चार भागों में विभक्त किया है। इन्हीं को चार आर्य–सत्य कहते हैः 1. दुःख – जीवन दुःखों से भरा है। जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, प्रिय–वियोग, अप्रिय की प्राप्ति आदि सभी दुःख हैं।, 2. दुःख समुदय – दुःख किसी कारण से उत्पन्न होते हैं।, 3. दुःख निरोध उनका अंत हो सकता है तथा 4. दुःख निरोध मार्ग– उनके अंत का उपाय है। जीवन में प्रगति के लिए इन चारों बातों को मानना आवश्यक है, जो व्यक्ति दुःख का अस्तित्व ही नहीं मानता, वह उनका अंत करने के लिए प्रयत्न ही क्यों करेगा? इसी प्रकार, यदि दुःख बिना कारण के उत्पन्न हो जाते हैं, तो उनका अंत होना असंभव है। साधना के लिए यह विश्वास भी आवश्यक है कि दुःखों का अंत हो सकता है और उसका उपाय है।

दुःख को बताने के लिए बौद्ध धर्म में एक चक्र का प्रतिपादन किया गया है, जिसमें बारह आरे अर्थात बातें हैं। एक बात से दूसरी बात उत्पन्न होती है और चक्र चलता रहता है।

जरा–मरण : 1. जरा भरण आदि दुःख तभी होते हैं जब जाति, 2. अर्थात् जन्म होता है, जाति तब होती है जब भव 3. अर्थात् उसे ग्रहण करने की इच्छा हो। यह इच्छा उपादान, 4. अर्थात आशक्ति के कारण होती है। उपादन का कारण है तृष्णा, 5. अर्थात बाह्य विषयों की लालसा। तृष्णा वेदना, 6. अर्थात् अनुकूल या प्रतिकूल की अनुभूति से उत्पन्न होती है। वेदना स्पर्श, 7. अर्थात् इन्द्रिय और विषयों के परस्पर संबंध से उत्पन्न होती है। स्पर्श का कारण है षडायतन 8. अर्थात इन्द्रियाँ। षडायतन का आधार नामरूप, 9. अर्थात् शरीर और चेतना का गर्भ के रूप में प्रथम संबंध है। यह संबंध विज्ञान, 10 अर्थात् मूल अनुभूति के कारण होता है। विज्ञान का कारण पूर्व जन्म के संस्कार और 11. संस्कारों का कारण अविद्या है।

यह क्रम सभी जगह एक-सा नहीं होता। बुद्ध ने अपने उपदेशों में बार-बार इसका उल्लेख किया है। इनको निदान (संसार का कारण) और भव-चक्र शब्द से भी प्रकट किया है। श्रद्धालु बौद्ध, बारह मणियों की माला रखते हैं और उसे घुमाते रहते हैं। अगला कदम है- दुःख के निरोध का मार्ग ढूँढ़ना और उसका पालन करना। इस मार्ग को 'निरोधगामिनी प्रतिपदा' (मध्यम) कहते हैं। यह अष्टांग भी कहलाता है।

बौद्ध धर्म की विशेषताएँ : इस धर्म की विशेषताएँ निम्न हैं :-

1. बौद्ध धर्म में ईश्वर की मान्यता नहीं है। यह मानवतावादी धर्म है। यह मनुष्य को बन्धनों से छुटकारा दिलानेवाला धर्म है।

2. यह हिन्दू धर्म के कर्मकांड की प्रतिक्रिया से उत्पन्न धर्म है। यह कर्म कांड के स्थान पर नैतिक धर्म पर बल देता है।

3. यह धर्म-कर्म तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास करता है। इस प्रकार, हिन्दू धर्म के मौलिक सिद्धान्त बौद्ध धर्म में भी है। बौद्ध धर्म भी निष्काम कर्म की धारणा में विश्वास करता है। निष्काम कर्म बंधन का कारण नहीं होता।

4. बौद्ध धर्म मध्यम मार्ग या माध्यम प्रतिपदा का प्रतिपादन करता है। यही मध्यम मार्ग हर जगह है-तत्वशास्त्र में भी और आचार शास्त्र में भी। बुद्ध का उपदेश है कि अतिवादिता को छोड़ दो, बीच का रास्ता ही सही है-वही रास्ता पकड़ो। न शरीर को अत्यधिक कष्ट दो और न भोग की इच्छा में तल्लीन रहो।

5. बौद्ध धर्म में स्वर्ग और नरक की कल्पना नहीं है। स्वर्ग की प्राप्ति नहीं, बल्कि निर्वाण की प्राप्ति इस जीवन की परमगति है। अर्थात निर्वाण को वर्तमान जीवन में भी प्राप्त किया जा सकता है।

6. बौद्ध धर्म के दो आधार भूत सिद्धान्त हैं- क्षणिकवाद तथा अनात्मवाद। स्थायी कुछ भी नहीं इस संसार में। आत्मा भी स्थायी नहीं। फिर आशक्ति कैसी और क्यों? आशक्ति और वह भी नश्वर चीजों से-इसे ही बुद्ध ने दुःख का कारण माना है और इसे दूर करने के लिए 'निर्वाण' का आध्यात्मिक लक्ष्य रखा है।

बौद्ध धर्म की नैतिक शिक्षाएँ : नैतिक शिक्षाओं की दृष्टि से बौद्ध धर्म में 'अपील' बहुत है। यह धर्म नैतिक सदगुणों का धर्म है। करूणा, दया, अहिंसा, सत्य, शुद्धता, आत्मसंयम आदि सदगुणों पर इतना अधिक बल दिया गया है कि बौद्ध धर्म को 'नैतिक शुद्धता, सदाचरण तथा मानवता के धर्म का पर्याय' माना जाने लगा है। बुद्ध स्वयं करूणा के अवतार कहे जाते हैं। अहिंसा की धारणा मनुष्य के लिए बुद्ध की करूणा के रूप में अनिवार्य सिद्ध हुई है।

बौद्ध धर्म दो मायने में अप्रतिम धर्म है–पहली बात यह कि इस धर्म में 'मनुष्य' केन्द्र–विन्दु में है। अन्य धर्मों में 'ईश्वर चिन्तन या स्वर्ग–नरक' केन्द्र–विन्दु में हैं। यह बौद्ध धर्म को अन्य धर्मों से अलग कर देता है। बौद्ध धर्म वर्तमान जीवन में मनुष्य के कर्म की नैतिक शुद्धता पर जोर देता है, मध्यम मार्ग को सर्वोत्तम मानता है और वर्तमान जीवन में ही 'निर्वाण' यानी जन्म–मरण के चक्र से मुक्ति को संभव मानता है।

दूसरी बात यह है कि भगवान बुद्ध का लक्ष्य यह रहा है कि ऐसे स्वतंत्र मनुष्य का विकास किया जाय जो पूर्वाग्रह से मुक्त हो। वह ऐसा हो कि अपने स्वयं के प्रकाश से वह अपने भविष्य का नक्शा और रास्ता तय करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हो। वस्तुतः 'आत्म दीपो भवः'–'अपना दीपक स्वयं बनो'– बुद्ध धर्म का यह उपदेश मनुष्य के लिए प्रकाश–स्तंभ के रूप में है।

उपसंहार : दोनों ही धर्म 6ठी शताब्दी ई0 पू0 के सामान्य धार्मिक और आध्यात्मिक चेतना के प्रतिफल थे। दोनों का उद्‌भव एक परिस्थिति में छठी सदी ई0 पू0 भारत में हुआ था। दोनों में अत्यधिक समानताएँ थी, जिस कारण लोग बहुत दिनों तक जैनधर्म को बौद्धधर्म का ही एक अंग मानते थे, क्योंकि दोनों ही धर्म ब्राह्मण–धर्म के विरूद्ध चलाये गये थे। दोनों धर्मों का लक्ष्य भी प्रायः एक ही था–ब्राह्मण धर्म की बुराईयों को दूर करना। बौद्ध धर्म के प्रवर्त्तक महात्मा बुद्ध और जैन धर्म के प्रवर्त्तक बर्द्धमान महावीर थे, परन्तु दोनों धर्मों में समानताओं का व्यापक महत्त्व है।

उपकारक–ग्रन्थ :

1. विवेकानन्द : पुनर्जन्म, (संक) साहित्य, नवम् खण्ड, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, प्रकाशन वर्ष–1986, पृष्ठ संख्या–233
2. डॉ0 रमेश चन्द्र जैन : जयोदय महाकाव्य परिशीलन, दिगम्बर जैन समाज, मदनगंज किशनगढ़, प्रकाशन वर्ष–1995, पृष्ठ संख्या–22
3. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा : जैन तथा बौद्ध दर्शन में मानवतावाद : एक तुलनात्मक अध्ययन।
4. पं0 दामोदर सातवलेकर : ऐतरेय उपनिषद्, भाष्यकार, पृष्ठ संख्या–36
5. डॉ0 महेन्द्र कुमार जैन : जैन दर्शन, पृष्ठ संख्या–370–371